☐ डॉ० गंगाराम गर्ग
प्राध्यापक महारानी श्री जया कालिज,
भरतपुर

नीतिकाव्य के विकास में हिन्दी-जैन मुक्तक काव्य की भूमिका

संस्कृत, प्राकृत व अपभ्रंश साहित्य की तरह हिन्दी में भी नीतिकाव्य की समृद्ध परम्परा रही है।'कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे' की धारणा के अनुसार नीति-सिद्धान्तों की प्रेरणाप्रद चर्चा साहित्य का चरम लक्ष्य भी है।

उत्तर मध्यकाल में शासक का लक्ष्य स्वार्थ-लिप्सावश प्रजा का शोषण रह गया तथा अधिकांश समाज नीतिभ्रष्ट होकर सुरा-सुन्दरी में लिप्त होना अपना आदर्श मानने लगा। हिन्दी के अधिकांश कवि भी अर्थलोलुप होकर घोर शृंगारिक तथा पतनोन्मुखी प्रेम प्रसंगों व झूठे प्रशस्तिगान को अपना कर्तव्य मानकर शब्दों का इन्द्रजाल दिखाने लगे। तब अनेक जैन कवियों ने समसामयिक वातावरण से प्रभावित न होकर ब्रजभाषा और उसमें प्रयुक्त दोहा, कवित्त, सवैया आदि छन्दों में ही ऐसा काव्य प्रस्तुत किया, जो व्यक्ति, समाज और शासन को आदर्श पथ प्रशस्त कर सके।

श्रीमाल परिवार में जन्मे श्वेताम्बर जैन बनारसीदास ने विभिन्न मत-मतान्तरों का रसपान कर एक नया भक्ति-रसायन तैयार किया, जिसमें आत्म-चिन्तन और सदाचार का पुट था। अब निर्गुण सन्त कवियों के समान जैन संतों की भक्ति और उपासना-पद्धति में सदाचार ने पहले से ज्यादा स्थान पा लिया। यही कारण है कि बनारसीदास के परवर्त्ती दिल्ली के द्यानतराय, बुन्देलखंड के देवीदास, जयपुर के बुधजन और पार्श्वदास जैसे महाकवियों ने 'बनारसी विलास' के अनुकरण पर क्रमशः 'धर्मविलास', 'परमानन्द विलास', 'बुधजन विलास', 'पारस विलास' जैसे विशाल काव्यग्रन्थों का प्रणयन किया। इनमें अनेक गेय पदों के अतिरिक्त लघु रचनाओं के रूप में पर्याप्त अगेय मुक्तक भी हैं। जिनका प्रधान विषय नीति प्रतिपादन है।

जैन नीतिकाव्य की इसी परम्परा में अध्यात्म मत के अनुयायी कोसल देश के विनोदीलाल, दादरी देश के धामपुर निवासी मनोहरदास तथा लक्ष्मीचंद ने कवित्त-सवैयों की रचना की। पं. रूपचंद की 'दोहा परमार्थी' हेमराज के 'दोहा शतक' और 'बुधजन सतसई' के दोहे का प्रमुख प्रतिपाद्य भी नीति ही रहा। गुजरात और राजस्थान में विहार करने वाले महान् सन्त योगिराज ज्ञानसार की स्तवनपरक और भक्तिपरक रचनाएँ राजस्थानी में होते हुए भी दो नीति प्रधान रचनाएँ सम्बोध अष्टोत्तरी और प्रस्ताविक अष्टोत्तरी पश्चिम हिन्दी की रचनाएँ हैं। सद्यप्राप्त सोनीजी की नशियाँ अजमेर में विद्यमान क्षत्रशेष कवि द्वारा विरचित ५०० कवित्तों का ग्रन्थ 'मनमोहन पंचशती' नीति-काव्य का अनुपम ग्रन्थ है। उक्त सभी ग्रन्थों में विद्यमान जैन नीति परम्परा का समन्वित रूप भारतीय संस्कृति की अनुपम धरोहर है। नीति परम्परा के चतुर्मुखी रूप—आचारनीति, अर्थनीति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सामाजिक नीति एवं राजनीति मध्यकालीन हिन्दी जैन काव्य में उपलब्ध हैं।

आचार नीति—प्रत्येक मनुष्य के आचरण करने योग्य नैतिक सिद्धान्त आचार नीति के अन्तर्गत आते हैं। इन नीति-सिद्धान्तों की अपेक्षा समाज और शासन की तुलना में व्यक्ति के निजी व्यवहार के लिए अधिक होती है। मनुष्य के निजी आचरण के लिए उपयोगी मानी गई नीतिपरक मान्यताएँ दो रूपों में प्रस्तुत की गई हैं—विधेयात्मक और निषेधात्मक। हिन्दी के जैन मुक्तक काव्य में उपलब्ध आचारगत मूल्य इस प्रकार है—

विधेयात्मक आचार नीति

अहिंसा—अहिंसा का सिद्धान्त जैनाचार का मूल है। जैनाचार में अहिंसा की सीमा किसी जीव की हत्या न करने तक ही सीमित नहीं। महाकवि बुधजन ने चोरी, चुगली, व्यभिचार, क्रोध, कपट, मद, लोभ, असत्य-भाषण तक को हिंसा का अंग मानकर उनके त्याग की प्रेरणा दी है। किसी भी व्यवहार से अन्य प्राणी का चित्त दुःखाना अहिंसा का उच्चतम आदर्श है। बुधजन के शब्दों में—

ये हिंसा के भेद हैं, चोर चुगल विभिचार
क्रोध कपट मद लोभ फुनि, आरम्भ असत विचार।
६६८

अपरिग्रह :

अध्यात्मी बनारसीदास चित्त की स्थिरता और शान्ति के लाभ के लिए अपरिग्रह वृत्ति को ग्राह्य बतलाते हैं—

जहां पवन नहिं संचरै, तहं न जल कल्लोल।
त्यौं सब परिग्रह त्याग तें, मनसा होय अडोल।५।
—ज्ञान पच्चीसी

क्षमा—दश लक्षण धर्मों में प्रमुखतम, क्षमाभाव एक अज्ञात कवि की बारहखड़ी रचना 'कको' में संघर्ष को दूर करने वाला कहा गया है—

षषा षुटकं निकारि कै, षिमा भाव चित्त ल्याव।
षुले कपाट अभ्यास के, षिरे कर्म दुखदाय।

इन्द्रिय-निग्रह—स्पर्श, दर्शन, श्रवण, स्वाद व सूँघना पांचों कर्मों के व्यवहार से प्राणी की पहचान होती है, किन्तु नीतिकारों ने इन इन्द्रियजन्य कर्मों का सेवन मर्यादानुकूल और सीमित ही माना है। अधिकांश जैन नीतिकारों ने हाथी, पतंग, मृग, मीन और अलि का उदाहरण देते हुए उक्त पाँचों कर्मों के अत्यधिक सेवन का निषेध किया है। बुधजन कहते हैं—

गज पतंग मृग मीन अलि, भये अध्य बसि नास।
जाके पांचौ बसि नहीं, ताकी कैसी आस।।१६।।

पं० रूपचन्द ने दोहा परमार्थी में इनको दुःखदायी और तृष्णा बढ़ाने वाला कहा है। उनकी धारणा है कि अस्थि का चर्वण करने वाले कुत्ते के समान विषयों के सेवन से विषयी मनुष्य की अतृप्ति बनी रहती है, फिर भी अज्ञानता के कारण वह अपनी ही हानि करता रहता है—

विषयन सेवत हो भले, तिस्ना तै न बुझाइ।
ज्यौं जल खारी पीव तै, बाढै तिस अधिकाय।४।
विषयन सेवत दुख मले, सुष विति हारे जाँन।
अस्थि चवत निज रुधिर तै, ज्यों सुख मानत स्वान।६।

इन्द्रिय-निग्रह का आधार है मन पर नियंत्रण। मनुष्य इन्द्रिय-लोलुप तभी रहता है, जब उसका मन मतवाले हाथी के समान अंकुश की अवहेलना कर देता है। बनारसीदास का कथन है—

ज्यों अंकुस मानें नहीं, महा मत्त गजराज।
त्यों मन तिसना में फिरै, गिणै न काज अकाज।१०।
—ज्ञान पच्चीसी

कवि भगवतीदास ने मन के स्वतन्त्र स्वभाव का चित्रण 'मन बत्तीसी' में करते हुए उस पर विवेक का अंकुश लगाये रखने का संकेत दिया है—

मन सौं बली न दूसरौ, देष्यौ यहि संसारि।
तीन लोक मैं फिरत ही, जाइ न लागै बार।८।
मन दासन को दास है, मन भूपन को भूप।
मन सब बातन जोग है, मन की कथा अनूप।६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्संग—मध्यकाल में अध्यात्म-उपासना के प्रारम्भकर्ता साम्प्रदायिक वर्ग भेद से दूर महान् सन्त बनारसीदास ने सत्संग के सामर्थ्य को प्रतिपादित करते हुए कहा है कि जिस प्रकार मलयाचल की सुगन्धित पवन नीम के वृक्ष को चन्दन के समान सुगन्धित बना देती है, उसी प्रकार साधु का साथ दुर्जन को भी सज्जन बना देता है—

निंबादिक चंदन करै मलयाचल की बास।
दुर्जन ते सज्जन भयो, रहत साधु के पास। २०।

—ज्ञान पच्चीसी

मनोहरदास ने 'पारस' के संसर्ग से 'कंचन' में परिवर्तित होने वाले लोहे और 'रसायन' का सहयोग पा सुस्वादु बनने वाले 'कत्था' का भी उदाहरण देकर सत्संग का माहात्म्य पुष्ट किया है—

चंदन संग कीये अनि काठि
जु चंदन गंध समान जुहो है।
'पारस' सों परसे जिम लोह,
जु कंचन सुद्ध सरूप जु सोहै।
पाय रसायन होत कथीर
जू रूप सरूप मनोहर जो है।
त्यौ नर कोविद संग कीयै
सठ पंडित होय सबै मन मोहै।

दान—दान अपरिग्रह का प्रकट रूप है। अतः दान की महिमा सभी जैन मुक्तककारों ने थोड़ी बहुत अवश्य कही है। महाकवि द्यानतराय की ५२ छन्द की रचना दान बावनी के अनुसार निर्धन, सेवक, भाट, साधु को दिया गया दान ही लाभकारी नहीं होता, अपितु शत्रु को दिया गया दान वैरभाव को समाप्त कर देने का महत्वपूर्ण काम करता है—

दीन को दीजिये होय दया मन,
मीत को दीजिये प्रीति बढ़ावै।
सेवक को दीजिए काम करै बहु,
साहब दीजिए आदर पावै।
शत्रु को दीजिए वैर रहै नहीं,
भाट को दीजिए कीरति गावै।
साध को दीजिए मोख के कारन,
हाथ दियौ न अकारथ जावै।४५।

जैन परम्परा में दान के चार प्रकार—औषधिदान, अन्नदान, अभयदान और ज्ञानदान महत्वपूर्ण माने गए हैं। बत्तीसढाला के रचयिता टेकचन्द ने चारों दानों का प्रतिफल इस प्रकार कहा है—

जो दे भोजन दान, सो मनवांछित पावै।
औषदि दे सो दान, ताहि न रोग सतावै।
सूत्र तणां दे दान, ज्ञान सु अधिको पावै।
अभैदान फल जीव, सिद्ध होइ सो अमर कहावै।३२।

हेमराज गोदीका के मत से सम्पत्ति दान देने से शोभा और वृद्धि को प्राप्त करती है—

संपति खरचत डरत सठ, मत संपति घटि जाय।
इह संपति शुभ दान दी, विलसत बढ़त सवाइ।९६।

योगिराज ज्ञानसार जी ने अपना-पराया तथा पात्र-अपात्र का विचार किये बिना बड़ी उदारता से दान देने का निर्देश दिया है—

अनुकंपा दांनै दियत, कहा पात्र परखंत।
सम विसमी निरखै नहीं, जलधर धर बरसंत।१५।

—प्रस्तावित अष्टोत्तरी

वचन—सृष्टि के अन्य प्राणियों की अपेक्षा मनुष्य को वाणी की सुविधा परमात्मा की एक अद्भुत कृपा है। महाकवि बनारसीदास और ज्ञानसार दोनों ने ही कर्कश वचन त्यागकर मृदु वचन कहना प्रियता और टूटे दिलों को जोड़ने का साधन बतलाया है—

जो कहै सहज करकश वचन, सो जग अप्रियता लहै

—वच. रत्न कवित्त–४

मन फाटे कूं मृदु वचन, कह्यो करन उपचार।
टूक टूक कर जुड़न कूं, टांका देत सुनार।४४।

—संबोध अष्टोत्तरी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टेकचन्द के विचार से बिना समझकर बोलने से अपयश का भागी बनना होता है—

वचन बोलिये समझि कै द्रव्य क्षेत्तर जोइ।
बिन समझै बोलति ह्वै, अपजस लेह सोइ।२७।

महाकवि बुधजन ने जिह्वा पर नियंत्रण रखकर अधिक खाने के अतिरिक्त अधिक बोलने की मनाही भी की है—

रसना राखि मरजादि तू, भोजन वचन प्रमान।
अति भोगति अति बोलतें, निहचै हो है हांन।२१७।

अवसरोचित व्यवहार—मनुष्य एक सामाजिक एवं बुद्धिसम्पन्न प्राणी है। अतः उसमें अवसरानुकूल व्यवहार की चतुराई जैन नीतिकारों ने भी आवश्यक मानी है। प्रकृति के सभी कार्य यथावसर सम्पन्न होते हैं इसलिए कवि 'गद' मनुष्य को अवसर न चूकने का उपदेश देते हैं—

अवसरि घनहर गुड़ै, फूल पणि अवसरि फूलै।
अवसरि बालित बल गहर, निसाण गहीलै।
अवसरि बरसै मेह, गीत पणि अवसर गावै।
अवसर चूकै मूढ़ तकै, पाछै पिछतावै।
अवसरि सिंगार कांमणि करै,
अवसर भ्रात परखिये।
कवि 'गद' कहै सुण राय हो,
सो अवसर कबहु न चूकिये।

बुधजन बोलने और मौन रहने के लिए भी अवसर का ध्यान रखना अपेक्षित समझते हैं—

औसर लखि के बोलिये, जथा जोगता बैन।
सावन भादों बरस तैं, सबही पावै चैन।११६।
बोल उठै औसर बिना, ताका रहै न मान।
जैसे कातिक बरस तैं, निन्दै सकल जहांन।११७।

समता—निन्दा अथवा स्तुति, द्वेष और राग को बढ़ाती है, अतः नीतिकारों ने समता भाव धारण करने पर बल दिया है। समता भाव से व्यक्ति की वाणी सहज ही मधुर हो जाती है—

निंदा न करै काहू, औगुन परिगुन जाइ।
संवर मन करि कैं, समता रस धारि जू।२१।
गुन हीये करै जु धाय, औगुन नहि चितलाय।
मधुर बैन बोलै, सुमारिग को लेत जूं।२२।

समतावान व्यक्ति क्रोधी व्यक्ति को भी शान्त कर देता है—

अति शीतल मृदु वचन तें, क्रोधानल बुझ जाय।
ज्यूं उफणतैं दूध कूं, पानी देत समाय।१८।
—ज्ञानसार कृत प्रस्तावित अष्टोत्तरी।

महाकवि द्यानतराय समतावान् से यह अपेक्षा रखते हैं कि वह शत्रु का भी सम्मान करे—

थावर जंगम मित्र रिपु, देखे आप समान।
राग विरोध करै नहीं, सोई समतावान।
—तत्त्वसार भाषा, छंद ३८

निज शत्रु जो घर माँहि आवै, मान ताको कीजिए।
अति ऊँच आसन मधुर वानी, बोलिकै जस लीजिए।
—दान बावनी छंद २७

दया—कविवर विनोदीलाल ने अपनी रचना 'नवकार मंत्र महिमा' में सभी उपासना पद्धतियों में श्रेष्ठ व उत्तम साधना कहकर 'दया' को सर्वाधिक महत्व दिया है—

द्वारिका के न्हाये कहा, अंग के दगाये कहा,
संख के बजाये कहा राम पाइतु है।
जटा के बढ़ाये कहा, भसम के चढ़ाये कहा,
धूनी के लगाये कहा सिव ध्यायतु है।
कांन के फराये कहा, गोरष के ध्याये कहा,
सींगी के सुनाये कहा सिद्ध ल्याइतु है।
दया धर्म जाने आपा पहिचाने बिनु,
कहै 'विनोदी' कहूँ मोष पाइतु है।३३।

मर्यादा-रक्षण—अपने कर्त्तव्य अथवा लक्ष्य की पूर्ति में जुटे रहने व उसमें सर्वस्व होम देने का संकेत सभी नीतिकारों ने दिया है। सतसईकार बुधजन का कहना है—

लाज काज खरचे दरव, लाज काज संग्राम।
लाज गये सरबस गयो, लाज पुरुष की मांम।११८।

शील—'कको' नाम की बारहखड़ी रचना में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शील को तप और 'वैराग्य' के समकक्ष महत्व दिया है—

स सा सील सरीसो तप नहीं सील बड़ो वैराग ।
सील सरपन बावड़े, सीला सीतल आग ।

क्षत्रशेष शील को विघ्नविनाशक, दुःखहर्ता तथा पूर्व कर्मबंधों को विघटित करने वाला मानते हैं। शील ही यश और सुख का दाता है। अन्य गुणों का समूह तो शील के पालन होने पर स्वतः ही हृदय में बस जाता है—

सील तै सकल गुन आप हिय वास करैं,
सील तैं सुजस तिहु जग प्रघटत है।
सील तैं विघन ओघ रोग सोग दूर होय,
सील तैं प्रबल दोस दुष विघटत है।
सील तैं सुहाग भाग दिन दिन उदै होय,
पूरब करम बंध दिननि घटत है।
सील तें सुहित सुचि दीसत न आंनि जग,
सील सब सुष मूल वेद यों रटत है।

निषेधात्मक आचार नीति

मनुष्य को जिन मनोवृत्तियों और दुर्गुणों से दूर रहने को कहा जाता है, उन्हें निषेधात्मक मूल्य कहा जा सकता है। जैन मुक्तकों में ये मूल्य इस प्रकार हैं—

सप्त व्यसन—अधिकांश जैन नीतिकारों ने रीतिकाल के प्रमुख दुर्गुण द्यूतक्रीड़ा, मद्यपान, मांसभक्षण, पर-नारीगमन, शिकार, स्तेय और वेश्यागमन आदि दुर्गुणों की कई स्थानों पर तीव्र भर्त्सना की है। बारहखड़ी के रचयिता जैन कवि सूरति सप्तव्यसन के त्याग को ही सुख पाने का आधार बतलाते हैं—

बबा विसन कुविसन है, विसन सात तू त्यागि।
बसि करि पाँचों इंद्रीनि कौं सुभ कारिज कौं लागि

शुभ कारज कौं लाग करि विसन सात ये भारी।
जूवां आमिस, सुरापान, मधु षेटक नाम बिसारी।
परधन चोरी अर वेश्या कौ त्याग करौ परनारी।
'सूरति' इस भव में सुख पावे, परभव सुख अधिकारी ॥२६॥

विनोदीलाल ने सप्त व्यसनों में रत व्यक्ति को नरक में जाने का भय दिखाया है—

हिंसा के करैया, मुख झूठ के बुलैया,
परधन के हरैया, करुणा न जाकै हीये हैं।

सहत के खवईया, मदपान के करइया,
कन्द मूल के षवइया, अरु कठोर अति हीये हैं।

सील के गमइया, झूँठी साखि के करइया,
महा नरक के जवइया जिन और पाप कीए हैं।

नीतिकार लक्ष्मीचन्द ने सातों व्यसनों को त्यागने की शिक्षा उपदेशात्मक शैली में श्रावक को इस प्रकार दी है—

जुवा मति षेलौ जानि, मांस अति षोटो मांनि,
मद सब तजि अर वेश्यां तजि नर तू

आखेट न कीज्यो मुक्ति चोरी न करौ
भूल पर बनिता तजि हित निज नारी करिजू।

ऐहि सात विसन जांनि, त्यागि भव उर आंनि।
कहै जिनवानी में षोटे चित धरि जू ॥२४॥

सामन्तों की विलासप्रियता को बढ़ाने वाले अर्थलोलुप दरबारी कवियों को परकीया-प्रेम के अमर्यादित आकर्षक चित्र खींचने में कोई संकोच नहीं रहा था, उनका आचरण भारतीय आचार-विचार के बड़ा प्रतिकूल था। जैन कवियों को इससे बड़ी खीझ रही। अतः उन्होंने उग्र स्वरों में परकीया-प्रेम की भर्त्सना की। लक्ष्मीचन्द परनारी को विष की झाल और अग्निदाह की संज्ञा देकर उसकी भयानकता इस प्रकार प्रकट करते हैं—

परनारी परतषि जानि अति विष की झाला।
परनारी परतषि मान, तुव अगनि विसाला।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परनारी परतषि, सील गुन भांजे छिन में।
परनारी परतषि, जानि षोटी अति मन में।
एह जानि भवि पर नारि कौ,
तजौ सील गुन धारि कै।
'लषमी' कहत रावन गये,
नरक भूमि निहारि कै।

कषाय—जैन आचार परम्परा में काम, क्रोध, मोह और मान चार कषाय माने गये हैं, जिनका त्याग श्रावक को आवश्यक माना है। नीतिकारों ने कषाय का विवेचन इस प्रकार किया है।

द्यानतराय ने वृद्धावस्था की दुर्दशा का चित्रण करते हुए लोभ द्वारा नियन्त्रित रहने की भर्त्सना प्रेरणाप्रद स्वरों में की है—

भूख गई घटि, कूख गई लटि,
सूख गई कटि खाट पर्‌यो है।
बैन चलाचल नैन टलावल
चैन नहीं पल व्याधि भर्‌यो है।
अंग उपांग थके सरवंग प्रसंग किए
जन नाक सर्‌यो है।
'द्यानत' मोह चरित्र विचित्र, गई सब सोभ
न लोभ हर्‌यो है।३६
—धर्मरहस्य बावनी

वृद्धावस्था में भी काम-वासना की निरन्तरता बने रहने की स्थिति बुधजन को पीड़ित करती है। तभी वे कामासक्त मनुष्य को प्रतारणा देते हुए कहते हैं—

तो जोबन में भामिनि के संग,
निसदिन भोग रचावै।
अंधा ह्वै धन्धे दिन सोवै,
बूड़ा नाड़ि हलावै।
जम पकरै तब जोर न चालै,
सैन बतावै।
मंद कषाय हूवै तो भाई,
भुवन त्रिक पद पावै॥
—षट पाठ

देवीदास ने कामाग्नि को शीलरूपी वृक्ष को भस्म करने वाली बतलाकर व कामान्ध व्यक्ति को नीच, महादुःख का भोगी, अपने लक्ष्य में सर्वथा असफल होने वाला व्यक्ति प्रतिपादित कर उसकी कटु शब्दों में भर्त्सना की है—

काम अंध सो पुरिष, सत्य करि सकै न कारज।
काम अंध सो पुरिष, तासु परिणाम न आरज।
काम अंध तह क्रिया मिलै, इक रंच न कोई।
काम अंध तैं अधम नहीं, जग में जन सोई।
गति नीच महा दुष भोगवत,
सो सब काम कलंक फल।
सो कामानल करि कै दहत,
परम सील तरुवर सबल॥

क्रोध होने की स्थिति में व्यक्ति को नीति-अनीति का ज्ञान तो रहता ही नहीं, वह आत्म-पीड़ित भी होता है। बुधजन का मत है—

नीति अनीति लखै नहीं, लखै न आप बिगार।
पर जारै आपन जरै, क्रोध अगनि की झार।६७२।

काम, क्रोध, लोभ या मोह के अतिरिक्त चौथे कषाय अभिमान की निन्दा उसकी निरर्थकता के तर्क से प्रतिपादित की है। संसार में सहज गति से होने वाले निर्माण एवं विनाश के कार्यों में व्यक्ति स्वयं को कर्त्ता मान लेता है; यह एक भ्रम मात्र है। हेमराज गोदीका का कथन है—

होत सहज उत्पात जग, बिनसत सहज सुभाइ।
मूढ़ अहंमति धारि कै, जनमि जनमि भरमाइ।३१।

तृष्णा—किसी वस्तु को हर स्थिति में प्राप्त करने की सामान्य इच्छा लोभ और तीव्रतम इच्छा तृष्णा कही जा सकती है। अन्य प्राणियों की अपेक्षा प्रकृति की अधिकतम सुविधाएँ प्राप्त करने के बाद भी मनुष्य किसी अप्राप्य वस्तु के लिए चिंतित रहता है तथा उसको प्राप्त करने की अमर्यादित चेष्टा करता है। एक अज्ञात कवि ने अपने ३२ दोहों में से एक दोहे में आशा या तृष्णा की स्थिति को पराधीनता-मूलक कहा है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जे आसा के दास ते पुरुष जगत दास के दास।
आसा दासी तास की, जगत दास है तास॥

महाकवि पार्श्वदास ने हितोपदेश पाठ में मनुष्य की बढ़ती हुई तृष्णा को उसके लक्ष्य में बाधक माना हैं—

विषय कषाय चाय तृष्णावति होवै।
हित कारिज की बात कबूँ नहिं जोवै।
धन उपार्जन करूं विदेसां जावूँ।
वा राजा महाराजा कूँ रिझवावूँ।
ब्याह करूं तिय कूं, गहणां घडवावूं।
लाणि बांटि जाति में, नाम करवावूँ।
गेह चुनावूँ और सपूत कहलावूँ।
विषय कषाय बढ़ाय, बड़ा हो जावूँ।
यूँ तृष्ना वसि मिनष जन्म करि पूरो।
हित कारिज करणे में रह्यो अधूरो॥२०॥

द्यानतराय ने अपनी 'धर्म रहस्य बावनी' में तृष्णा को हृदयपीड़क कहा है। तृष्णाहीन व्यक्ति बेपरवाह होकर अत्यन्त सुख पाता है—

चाह की दाह जलै जिय मूरख,
बेपरवाह महासुषकारी ॥२५॥

चिन्ता—अप्राप्य जानकर भी किसी वस्तु को प्राप्त करने के लिए मानसिक पीड़ा पाना चिन्ता का भाव है। चिन्ता को चिता के समान बतलाकर द्यानतराय ने पुरानी परम्परा का ही निर्वाह किया है।

चिंता चिता दूहू विषै, बिंदी अधिक सदीव।
चिंता चेतनि को दहै, चिता दहै निरजीव ॥१८॥

भाग्यवश जो प्राप्त हो जाय, वह यथेष्ट है। इस परम्परागत संस्कार के कारण द्यानतराय चिन्ता की स्थिति में कोई तर्क संगति भी नहीं देखते—

रैनि दिना चिन्ता, चिता मांहि जलै मति जीव।
जो दीया सो पाया है, और न देय सदैव ॥४४॥
—सुबोध पंचाशिका

बाह्याचार-आसक्ति—अध्यात्मचिन्तन में पर्याप्त-स्वतन्त्रता होने के कारण भारत में उपासना पद्धतियाँ विभिन्न रूपों में बढ़ती रही हैं। स्वार्थ की प्रबलता के कारण इन उपासना-पद्धतियों का लक्ष्य उपास्य के प्रति निष्ठा को अनदेखा कर प्रदर्शन और रूढ़ाचार की ओर मुड़ता गया है। इसके विरोध में निर्गुण सन्तों ने तो अपने उद्गार प्रकट किये ही, जैन नीतिकार भी इसकी उपेक्षा नहीं कर सके। मिथ्यात्व से छुटकारा पाये बिना शास्त्र पठन, कायाकष्ट, योगासन आदि बाह्याचार के प्रति जैन कवि विनोदीलाल ने कबीर जैसे तेवर ही दिखलाए हैं—

ग्रन्थन के पढ़े कहा, पर्वत के चढ़े कहा
कोटि लक्षि बढ़ै कहा रंकपन में।
संयम के आचरे कहा, मौन व्रत धरे कहा,
तपस्या के करे कहा, कहा फिरै वन में।
दाहन के दये कहा, छंद करैत कहा,
जोगासन भये कहा, बैठे साधजन में।
जौ लों ममता न छूटै, मिथ्या डोर हू न टूटै,
ब्रह्म ज्ञान बिना लीन लोभ की लगन में।

मुक्तककार हेमराज ने शास्त्रपठन, तीर्थस्नान तथा विरक्ति भाव को सदाचार के अभाव में निरर्थक माना है—

पढ़त ग्रन्थ अति तप तपति, अब लौं सुनी न मोष।
दरसन ज्ञान चरित्त सों, पावत सिव निरदोष ॥२७॥
कोटि बरस लौं धोइये, अढसठि तीरथनीर।
सदा अपावन ही रहै, मदिरा कुंभ सरीर ॥३०॥
निकस्यो मंदिर छांड़ि कै, करि कुटम्ब कौ त्याग।
कुटी मांहि भोगत विषै, पर त्रिय स्यों अनुराग ॥२८॥

बनारसीदास के गुरु पं० रूपचन्द अपनी रचना 'दोहा परमार्थी' में तत्व चिन्तन के बिना बाह्याचार का कोई मूल्य नहीं मानते—

ग्रन्थ पढ़ै अरु तप तपौ, सहौ परीसह साहु।
केवल तत्व पिछानि बिनु नहीं कहूँ निरबाहु ॥६४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शोक—पश्चात्ताप अथवा 'शोक' की स्थिति भी जैन नीतिकारों ने अच्छी नहीं मानी। लक्ष्मीचन्द कहते हैं कि शोक करने से व्यक्ति का सुख नष्ट हो जाता है। 'शोक' या 'पश्चात्ताप' करने से बिगड़े काम में कोई सुधार भी नहीं हो सकता—

सोच कबहूँ न कोजै, मन परतीत लीज्यौ,
तेरौ सोच कीये, कछू कारिज न सरिहै,
सोच कीये दुष भासै, सुष सब ही जन नासै
।।२५।।

दुष्कर्म—दुष्कर्म के उदय मात्र से धार्मिक और सदाचार की बातें कतई नहीं सुहाती, इसी भय से दुष्कर्म से बचते रहने की सीख कविवर बनारसीदास ने अपनी 'ज्ञान पच्चीसी' में दी है—

ज्यों ज्वर के जोर से, भोजन की रुचि जाय।
तैसें कुकरम के उदय, धर्म वचन न सुहाय ।।२।।

दुष्कर्म का एक छोटा अंश भी समस्त अच्छाइयों को उसी प्रकार खत्म कर देता है जिस प्रकार मीठे दूध को छाछ की एक बूंद खट्टा बना देती है—

टटा टपकौ छाछि कौ, मटकी दूध में डार।
मीठा सौ षाटौ करै, यहै कर्म विचारि। ११ ।ककौ.

अज्ञात कवि की रचना 'क को' में किसी काम की सम्पन्नता के लिए दूसरे की बाट जोहना या उसके आधीन रहना दुःखदायी कहा है—

हाहा हू व्यौहार है कै परवश दुखदाय।
क्यों न आप बसि हूजिये, होय परम सुखदाय।३६।

कृपणता—कविवर विनोदी लाल ने अपनी सम्वादात्मक रचना कृपण पच्चीसी में पति-पत्नी के संवाद के माध्यम से कृपण पति के स्वभाव पर फब्तियाँ कसी हैं? संत ज्ञानसार तो धन का सदुपयोग न करने वाले कृपण को 'मृत' के समान तिरस्कृत मानते हैं—

खात न खरचत, विलसयत, दान दियन को बात।
दुरजय लोभ अचित गति, सचित धन मर जात।८३।

सामाजिक नीति—निश्चित भूभाग पर निश्चित सामाजिक मर्यादाओं के साथ जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्ति समाज का निर्माण करते हैं। भारतीय नीतिकारों ने गुरु, नारी, तथा सामाजिक व्यवहार आदि विषयों पर नीतिपरक उक्तियों अभिव्यक्त की है।

गुरु—निर्गुण एवं सगुण भक्ति काव्य की तरह जैन नीतिकारों ने गुरु का सर्वाधिक महत्व माना है। गुरु ही मनुष्य को समाज में उत्तम जीवन जीने योग्य बनाता है। परम्परागत नीतिकारों की तरह बनारसीदास के गुरु पण्डित रूपचन्द गुरु का महत्व इस प्रकार प्रकट करते हैं—

गुरु बिन भेद न पाइये, को पर को निज वस्तु।
गुरु बिन भव सागर विषै, परत गहै को हस्तु।६७।
गुरु माता अर गुर पिता अरु बंधव गुरु मित्त।
हित उपदेशै कवल ज्यों विगसावै जिन चित्त।६६।

दुर्जन-सज्जन—समाज में भले-बुरे दोनों ही प्रकार के व्यक्ति पाये जाते हैं। तुलसीदास आदि सभी प्रमुख कवियों ने प्रवृत्तियों के आधार पर दुर्जन और सज्जन दोनों वर्गों की विशेषताएँ अंकित की हैं। जैन नीतिकारों ने दुर्जन को सर्प और सज्जन को कल्पवृक्ष के रूप में प्रस्तुत कर क्रमशः उनकी कुटिलता और उदाराशयता की ओर इंगित किया है। लक्ष्मीचन्द और अज्ञात कवि के दो छन्द इस प्रकार हैं—

दुरजन सरप समान बिई छल ताकत डोलै।
दुरजन सरप समान, सति वचन कबहु न बोलै।
दुरजन सरप समान, दूध किम पावो भाई।
दुरजन सरप समान, अंति विष प्रान हराई।
दुरजन सम नहीं जाँन तुव तीन लोक में दुष्टजन।
ऐह जांनि भवि तुम धीजमति,
लिषमी कहैत भवि लेहु सुन।१०।।

Jain Education International
For Private & Personal Use Only
www.jainelibrary.org

सज्जन परितुछ गुन करै, मानै गिर गुन भाय।
तातै सज्जन पुरुष सब, कलप ब्रष सम थाय।

सामाजिक व्यवहार—पारस्परिक मेलजोल से रहने व एक-दूसरे का सम्मान करने से ही अच्छे समाज का निर्माण होता है। नीतिकार बुधजन ने पारस्परिक व्यवहार में उत्तम शिष्टाचार की अपेक्षा की है—

आवत उठि आदर करै, बोले मीठे बैन।
जातै हिलमिल बैठना जिय पावे अति चैन।१४८।
भला बुरा लखिये नहीं, आये अपने द्वार।
मधुर बोल जस लीजिए, नातर अजस तैयार।१४६।

समाज में व्यवहार करते समय अधिक सरलता की अपेक्षा थोड़ी चतुराई का भाव रखना चाहिए—

अधिक सरलता सुखद नहीं, देखो विपिन निहार।
सीधे विरवा कटि गये, बांके खरे हजार ।।१६५।।

—बुधजन सतसई

नारी—काम की प्रबलता के विरोध के कारण मध्यकालीन काल में नारी के प्रति कटूक्तियाँ अधिक कह दी गई हैं, जिससे नारी की गरिमा को हानि हुई है। 'राजमती' और 'चन्दनबाला' के आदर्श चरित्र प्रस्तुत करने वाले जैन काव्य में कटूक्तियाँ अपेक्षाकृत कम हैं। नारी का एक सुखद चित्र जैन कवि साधुराम ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

नारी बिना घर में नर भूत सो,
नारी सब घर की रखवारी।
नारि चषावत है षट् भोजन,
नारि दिखावत है सुख भारी।
नारी सिव रमणी सुष कारण,
पुत्र उपावन कूं परवारी।
और कहाय कहा लूं कहूँ तब,
साष बड़ी मन रंजनहारी।

आर्थिक नीति—भूख, रोजगार, निर्धनता, धन के उपयोग सम्बन्धी उक्तियाँ आर्थिक नीति का अंग हैं।

भूख—अध्यात्मसाधना, सदाचार, कुलमर्यादा का पालन भूख की स्थिति में नहीं हो सकता, अतः अच्छे समाज के निर्माण की भावना रखने वाले राष्ट्र-निर्माताओं को सबको 'रोटी' की व्यवस्था करनी चाहिए। 'मनमोहन पंच शती' के रचनाकार छत्रशेष का कथन है—

तन लौनि रूप हरे, थूल तन कृश करै,
मन उत्साह हरै, बल छीन करता।
छिमा कौ मरोरै गही, दिढ़ मरजाद तोरै,
सुअज सहेन भेद करै लाज हरता।
धरम प्रवृत्ति जप तप ध्यान नास करै,
धीरज विवेक हरै करति अथिरता।
कहा कुलकानि कहा राज पावे गुरु,
आन क्षुधा बस होय जीव बहुदोष करता।

रोजगार—बेरोजगारी का कष्ट आज ही नहीं, मध्यकाल से ही व्यक्ति अनुभव करता रहा है। रोजगार से ही व्यक्ति को समाज और परिवार में प्रतिष्ठा मिलती है।

रोजगार बिना यार, यार सों न करै बात,
रोजगार बिन नारि नाहर ज्यों धूरि है।
रोजगार बिना सब गुन तो बिलाय जाय,
एक रोजगार सब, औगुन को चूर है।
रोजगार बिना कछू बात बनि आवै नहीं,
बिना दाम आठो जाम, बैठा धाम झूर है।
रोजगार बिना नांहि रोजगार पांहि,
अैसो रोजगार येक धर्म कीये पूर हैं ।।१७।।

निर्धनता का एक भयावह चित्र मनोहरदास ने भी प्रस्तुत किया है—

भूष बुरी संसार, भूष सबही गुन मोवै।
भूष बुरी संसार, भूष सबको मुष जोवै।
भूष बुरी संसार, भूष आदर नहीं पावै।
भूष बुरी संसार, भूष कुल कान घटावै।
भूष गंवावै लाज, भूष न राषै कारमें।
मन रहसि मनोहर हम कहें,
भूष बुरी संसार में ।।११।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महाकवि बनारसीदास ने कु-कलाओं के अभ्यास की निन्दा करते हुए दरिद्रता को प्रतिष्ठा का घातक बतलाया है—

कुकला अभ्यास नासहि सुपथ,
दारिद सौ आदर टलै ।

निर्धन हो जाने पर लोगों के सम्पर्क तोड़ देने की निर्दयता पर ज्ञानसार ने व्यंग्य किया है—

धन घर निर्धन होत ही, को आदर न दियंत ।
ज्यौं सूखे सर की पथिक, पंखी तीर तजंत ।

'अपरिग्रह' दान के रूप में धन की सीमितता और सदुपयोग तथा 'लोभ' व कृपणता की निन्दा के रूप में धन की समुचित उपयोगिता की उक्तियाँ आर्थिक नीति के अन्तर्गत भी समाहित की जा सकती है ।

राजनीति—शासक एवं शासित की प्रवृत्तियाँ, शासन के अंग और उनके कर्तव्य तथा शासन-व्यवस्था सम्बन्धी उक्तियाँ राजनीति के अन्तर्गत आती हैं । अधिकांश जैन नीतिकारों के मुक्तकों में राजनीति नहीं है । दीवान के रूप में जयपुर राज्य में काम करने वाले कवि बुधजन ने राजनीति के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किये हैं ।

बुधजन के अनुसार शासक अथवा राजा ढीले चित्त का नहीं होना चाहिए, नहीं तो दृढ़तापूर्वक अपने आदेश नहीं मनवा सकेगा—

गनिका नष्ट संतोष तें, भूप नष्ट चित्त ढील ।
।।१७७।।

राजा अपने कार्य की पूर्ति के लिए किसी की पीड़ा को सहृदयतापूर्वक नहीं विचारता—

भूपति विसनी पाहुना, जाचक जड़ जमराज ।
ये परदुःख जोवै नहीं, कीयै चाहै काज ।।२६३।।

राजा से परिचय थोड़ा-बहुत अवश्य लाभदायक होता है—

महाराज महावृक्ष की, सुखदा शीतल छाय ।
सेवत फल लाभै न तो, छाया तौ रह जाय ।।१२५।।

प्रजा को राजा के आदेशों व नीति का अनुसरण करना चाहिए ।

नृप चालै ताही चलन, प्रजा चलै वा चाल ।
जा पथ जा गजराज तहैं, जातजू गज बाल ।
।।१३८।।

राजा और प्रजा के मधुर सम्बन्ध बनाये रखने में मन्त्री की बड़ी भूमिका रहती है—

नृप हित जो पिरजा अहित, पिरजा हित नृप रोस ।
दोउ सम साधन करै, सो अमात्य निरदोष ।।२१०।।

अच्छे मन्त्रियों के अभाव में राजा अपने आदर्शों से च्युत हो जाता है—

नदी तीर को रूखरा, करि बिनु अंकुश नार ।
राजा मंत्री ते रहित, बिगरत लगै न बार ।।१२४।।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि हिन्दी जैन मुक्तक काव्य में वैयक्तिक व्यवहार, समाज, राज्य एवं अर्थ से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं का गम्भीरतापूर्वक विवेचन किया गया है । भारतीय नीति साहित्य के विकास में शिथिलाचार के युग में लिखी गईं इन रचनाओं का सामयिक योगदान तो है ही, उक्त रचनाएँ भारतीय चिन्तन की संवाहक होने के कारण आज भी मूल्यवान् हैं ।

भारतीय चिन्तन और काव्य के विकास में इनका उल्लेख अतीव आवश्यक है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org